REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 14 | ISSUE - 3 | DECEMBER - 2024

समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री अस्मिता: पितृसत्ता, प्रतिरोध और आत्मनिर्णय का विमर्श

Dr. A. V. Nandaniya
Associate Professor, Shri V. M. Mehta Muni. Arts & Commerce College, Jamnagar.

प्रस्तावना

साहित्य समाज की चेतना का सृजनात्मक प्रतिबिंब है। किसी भी समाज में स्त्री की स्थिति, उसकी सामाजिक भूमिका, उसकी आकांक्षाएँ और उसके संघर्ष साहित्य में किसी न किसी रूप में अभिव्यक्त होते रहे हैं। हिंदी साहित्य के विकासक्रम में स्त्री का चित्रण भी निरंतर परिवर्तित हुआ है। प्रारंभिक साहित्य में स्त्री को प्रायः प्रेम, त्याग, करुणा, मातृत्व और पारिवारिक मर्यादा के संदर्भ में देखा गया, जबकि आधुनिक और विशेष रूप से समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री स्वयं अपनी पहचान, इच्छा, स्वतंत्रता और अधिकारों के प्रश्न उठाती हुई दिखाई देती है।

समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री अब केवल पुरुष-केंद्रित कथा की पात्र नहीं है। वह अपने अनुभवों की कथाकार, अपने अस्तित्व की व्याख्याकार और अपनी अस्मिता की निर्मात्री बन रही है। उसके सामने प्रश्न केवल यह नहीं है कि समाज उसे किस रूप में देखता है, बल्कि यह भी है कि **वह स्वयं को किस रूप में देखना चाहती है।**

सिमोन द बोउवार ने अपनी प्रसिद्ध कृति *The Second Sex* में स्त्री की सामाजिक निर्मिति पर विचार करते हुए बताया कि स्त्री की पहचान जैविक अस्तित्व से अधिक सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रियाओं द्वारा निर्मित होती है [1]। यह विचार स्त्री अस्मिता के विमर्श को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। स्त्री होने का अर्थ केवल जैविक भिन्नता नहीं है; समाज स्त्री के लिए अनेक भूमिकाएँ, अपेक्षाएँ और सीमाएँ निर्धारित करता है।

समकालीन हिंदी साहित्य इन निर्धारित भूमिकाओं पर प्रश्न करता है। यहाँ स्त्री विवाह, परिवार, मातृत्व, देह, प्रेम, काम, शिक्षा, रोजगार, संपत्ति, सामाजिक प्रतिष्ठा और व्यक्तिगत स्वतंत्रता जैसे प्रश्नों पर अपनी आवाज उठाती है।

इसलिए स्त्री अस्मिता का समकालीन विमर्श केवल "स्त्री की समस्याओं" का साहित्यिक चित्रण नहीं है। यह **सत्ता-संबंधों, सामाजिक संरचनाओं और स्त्री के आत्मनिर्णय के अधिकार** का विमर्श है।

स्त्री अस्मिता का अर्थ और संदर्भ

"अस्मिता" का अर्थ व्यक्ति की अपनी पहचान, आत्मबोध और अस्तित्व की चेतना से है। जब इसे स्त्री के संदर्भ में देखा जाता है, तो स्त्री अस्मिता का प्रश्न उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व और सामाजिक पहचान से जुड़ जाता है।

परंपरागत समाज में स्त्री की पहचान अक्सर उसके संबंधों से निर्धारित की जाती रही है—किसी की बेटी, पत्नी, बहू या माँ के रूप में। उसकी व्यक्तिगत इच्छाओं और स्वतंत्र निर्णयों को परिवार और समाज की अपेक्षाओं के अधीन रखा गया।

Simone de Beauvoir का स्त्री-विमर्श इसी सामाजिक निर्माण की आलोचना करता है [1]। उनके विचारों से यह समझने में सहायता मिलती है कि स्त्री की पहचान प्राकृतिक रूप से निर्धारित नहीं होती, बल्कि सामाजिक संस्थाएँ और सांस्कृतिक धारणाएँ उसे निरंतर आकार देती हैं।

समकालीन हिंदी साहित्य इस सामाजिक निर्माण को चुनौती देता है। यहाँ स्त्री यह प्रश्न करती है कि उसकी पहचान केवल पारिवारिक संबंधों से क्यों निर्धारित हो? क्या उसका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं है? क्या उसे अपने जीवन, शरीर, शिक्षा, करियर, प्रेम और भविष्य के बारे में स्वयं निर्णय लेने का अधिकार नहीं होना चाहिए?

इन प्रश्नों से स्त्री अस्मिता का आधुनिक विमर्श निर्मित होता है।

पितृसत्ता और स्त्री की सामाजिक स्थिति

स्त्री अस्मिता के प्रश्न को पितृसत्ता की अवधारणा से अलग करके नहीं समझा जा सकता। पितृसत्ता ऐसी सामाजिक व्यवस्था को कहा जाता है जिसमें परिवार, संपत्ति, सामाजिक सत्ता और निर्णय लेने की महत्वपूर्ण संरचनाओं पर पुरुषों का प्रभुत्व अधिक होता है।

Kate Millett ने *Sexual Politics* में लैंगिक संबंधों को सत्ता-संबंधों के रूप में देखने की आवश्यकता पर बल दिया [2]। उनके अनुसार स्त्री-पुरुष संबंध केवल निजी संबंध नहीं हैं; उनमें सामाजिक और राजनीतिक शक्ति-संबंध भी निहित होते हैं।

समकालीन हिंदी साहित्य में पितृसत्ता अनेक रूपों में दिखाई देती है। कभी वह परिवार की "इज्जत" के नाम पर स्त्री की स्वतंत्रता को नियंत्रित करती है, कभी विवाह संस्था के माध्यम से उसके जीवन का निर्णय करती है और कभी स्त्री की देह तथा यौनिकता पर सामाजिक नियंत्रण स्थापित करती है।

स्त्री के लिए निर्धारित "अच्छी पत्नी", "आदर्श बहू", "त्यागमयी माँ" और "संस्कारी स्त्री" जैसी छवियाँ भी पितृसत्तात्मक सामाजिक अपेक्षाओं का हिस्सा हो सकती हैं।

समकालीन स्त्री लेखन इन छवियों को स्वीकार करने के बजाय उनका पुनर्पाठ करता है।

परंपरा और स्त्री की छवि

हिंदी साहित्य में स्त्री की छवि एकरूप नहीं रही है। विभिन्न कालों में स्त्री को अलग-अलग रूपों में प्रस्तुत किया गया है। कभी वह प्रेम की प्रतीक रही, कभी त्याग की प्रतिमूर्ति, कभी देवी और कभी सामाजिक मर्यादा की संरक्षक।

आधुनिक हिंदी साहित्य के विकास के साथ स्त्री के जीवन की वास्तविक समस्याएँ साहित्य के केंद्र में आने लगीं। प्रेमचंद की *सेवासदन* जैसी कृति में स्त्री के जीवन, विवाह, सामाजिक नैतिकता और वेश्यावृत्ति से जुड़े प्रश्नों को सामाजिक संदर्भ में देखा गया है [3]।

प्रेमचंद का साहित्य इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि उसमें स्त्री का प्रश्न केवल व्यक्तिगत नैतिकता का प्रश्न नहीं रह जाता, बल्कि सामाजिक संरचना और आर्थिक परिस्थितियों से जुड़ जाता है।

समकालीन हिंदी साहित्य ने इस परंपरा को आगे बढ़ाते हुए स्त्री के अनुभवों को अधिक आत्मगत और प्रतिरोधात्मक स्वर प्रदान किया है।

स्त्री का आत्मबोध और आत्मनिर्णय

स्त्री अस्मिता का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है—**आत्मनिर्णय**।

आत्मनिर्णय का अर्थ है कि स्त्री अपने जीवन के महत्वपूर्ण निर्णय स्वयं लेने का अधिकार रखती है। विवाह करना या न करना, शिक्षा प्राप्त करना, रोजगार चुनना, प्रेम करना, अपने शरीर के संबंध में निर्णय लेना और अपनी जीवन-शैली निर्धारित करना—ये सभी उसके व्यक्तिगत अधिकारों से जुड़े प्रश्न हैं।

समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री पात्रों का आत्मनिर्णय अक्सर संघर्ष के माध्यम से सामने आता है। वह परिवार और समाज की अपेक्षाओं के विरुद्ध अपने निर्णय लेने का प्रयास करती है।

यह संघर्ष हमेशा नाटकीय विद्रोह के रूप में नहीं होता। कई बार यह बहुत सूक्ष्म होता है—अपनी शिक्षा जारी रखने का निर्णय, नौकरी करने की इच्छा, विवाह के संबंध में अपनी राय रखना, घरेलू हिंसा को स्वीकार न करना या अपने लेखन और रचनात्मकता के लिए स्वतंत्र समय माँगना। यही छोटे-छोटे निर्णय स्त्री के आत्मबोध को मजबूत करते हैं।

समकालीन हिंदी महिला लेखन

समकालीन हिंदी साहित्य में महिला लेखिकाओं ने स्त्री जीवन के उन अनुभवों को साहित्य का विषय बनाया है जिन्हें लंबे समय तक निजी या घरेलू समस्या मानकर साहित्यिक विमर्श से बाहर रखा जाता था।

कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, मृदुला गर्ग, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, चित्रा मुद्गल, अनामिका और गीतांजलि श्री जैसी लेखिकाओं ने विभिन्न रूपों में स्त्री जीवन, देह, संबंध, विवाह, सामाजिक नियंत्रण और आत्मनिर्णय के प्रश्नों को सामने रखा है।

मन्नू भंडारी के लेखन में मध्यवर्गीय स्त्री के जीवन, पारिवारिक संबंधों और व्यक्तिगत अस्तित्व के प्रश्न महत्वपूर्ण रूप से उपस्थित होते हैं। उनकी रचनाएँ यह दिखाती हैं कि पारिवारिक जीवन के भीतर स्त्री की स्वतंत्रता और भावनात्मक आवश्यकताएँ किस प्रकार संघर्ष का विषय बन सकती हैं [4]।

कृष्णा सोबती के लेखन में स्त्री की भाषा, देह और व्यक्तित्व का प्रश्न विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। *मित्रो मरजानी* की मित्रो जैसी पात्र पारंपरिक स्त्री-छवि को चुनौती देती है और अपनी इच्छाओं को व्यक्त करने से संकोच नहीं करती [5]।

इसी प्रकार मृदुला गर्ग का लेखन स्त्री की व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक नैतिकता के बीच तनाव को रेखांकित करता है [6]।

स्त्री देह और अस्मिता

समकालीन स्त्री-विमर्श में स्त्री की देह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। लंबे समय तक स्त्री की देह को पुरुष दृष्टि, नैतिकता और सामाजिक नियंत्रण के माध्यम से देखा जाता रहा है।

स्त्री की देह पर नियंत्रण उसके वस्त्र, उसकी गतिशीलता, उसकी यौनिकता, विवाह और मातृत्व से जुड़े सामाजिक नियमों में दिखाई देता है।

Simone de Beauvoir ने स्त्री के शरीर और उसकी सामाजिक स्थिति के बीच संबंध को विस्तार से समझाया है [1]। बाद में feminist theory ने यह प्रश्न उठाया कि स्त्री की देह को कौन परिभाषित करता है और स्त्री को अपनी देह के संबंध में कितना अधिकार प्राप्त है।

हिंदी साहित्य में यह प्रश्न धीरे-धीरे अधिक स्पष्ट हुआ है। समकालीन महिला लेखन में स्त्री अपनी देह को केवल सौंदर्य या पुरुष-आकर्षण की वस्तु के रूप में नहीं, बल्कि अपने अस्तित्व के हिस्से के रूप में देखने लगी है।

यह परिवर्तन साहित्यिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे स्त्री की इच्छा और अनुभव साहित्यिक अभिव्यक्ति का वैध विषय बनते हैं।

प्रेम, विवाह और स्त्री की स्वतंत्रता

भारतीय समाज में विवाह एक महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था है। लेकिन स्त्री-विमर्श विवाह संस्था के भीतर मौजूद शक्ति-संबंधों पर भी प्रश्न करता है।

क्या विवाह के बाद स्त्री की स्वतंत्र पहचान समाप्त हो जानी चाहिए? क्या पत्नी की भूमिका उसके व्यक्तित्व की सभी अन्य संभावनाओं पर हावी होनी चाहिए? क्या प्रेम और विवाह में स्त्री की इच्छा को पुरुष की इच्छा के समान महत्व प्राप्त है?

समकालीन हिंदी साहित्य इन प्रश्नों को विभिन्न कथानकों और पात्रों के माध्यम से उठाता है।

मन्नू भंडारी की *आपका बंटी* में टूटते वैवाहिक संबंधों के प्रभाव को केवल पति-पत्नी के संबंध तक सीमित नहीं रखा गया, बल्कि उसके प्रभाव को बच्चे और पूरे पारिवारिक जीवन के स्तर पर देखा गया है [4]।

इस प्रकार विवाह संबंधी साहित्यिक विमर्श स्त्री की स्वतंत्रता के साथ-साथ परिवार की संरचना और भावनात्मक संबंधों की जटिलता को भी सामने लाता है।

कामकाजी स्त्री और दोहरी भूमिका

शिक्षा और रोजगार ने आधुनिक स्त्री के जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है। आर्थिक स्वतंत्रता ने स्त्री को निर्णय लेने की क्षमता और सामाजिक आत्मविश्वास प्रदान किया है।
लेकिन कामकाजी स्त्री के सामने एक दूसरी चुनौती भी है—**दोहरी भूमिका**।

एक ओर उससे professional excellence की अपेक्षा की जाती है और दूसरी ओर उससे पारंपरिक घरेलू भूमिकाओं को निभाने की अपेक्षा भी बनी रहती है।

Arlie Hochschild ने "second shift" की अवधारणा के माध्यम से यह बताया कि नौकरी करने वाली महिलाओं को कार्यस्थल के बाद घर में अतिरिक्त श्रम करना पड़ता है [7]।

भारतीय और हिंदी साहित्यिक संदर्भ में यह स्थिति परिवार, करियर और व्यक्तिगत जीवन के बीच तनाव के रूप में दिखाई देती है।

समकालीन साहित्य की स्त्री इसलिए केवल रोजगार की माँग नहीं करती; वह घरेलू श्रम के समान वितरण और अपने समय पर अधिकार की भी माँग करती है।

स्त्री और भाषा

स्त्री अस्मिता का प्रश्न केवल विषय-वस्तु का प्रश्न नहीं है; यह भाषा का भी प्रश्न है।

परंपरागत साहित्यिक भाषा में अनेक अनुभव ऐसे रहे हैं जिन्हें पुरुष दृष्टिकोण से व्यक्त किया गया। स्त्री लेखन ने भाषा में निजी अनुभव, घरेलू जीवन, शरीर, मातृत्व, कामना, पीड़ा और प्रतिरोध के नए शब्द और स्वर जोड़े।

Elaine Showalter ने महिला लेखन के अध्ययन में स्त्री की साहित्यिक परंपरा और स्वतंत्र रचनात्मक आवाज की आवश्यकता पर विचार किया [8]।

हिंदी महिला लेखन ने भी साहित्यिक भाषा को अधिक आत्मीय और अनुभवपरक बनाया है। स्त्री के निजी अनुभव को साहित्य का वैध अनुभव बनाना स्वयं एक प्रकार का प्रतिरोध है।

जब स्त्री अपने अनुभव को स्वयं शब्द देती है, तो वह केवल कहानी नहीं लिखती; वह अपनी अस्मिता को भाषा प्रदान करती है।

स्त्री, परिवार और प्रतिरोध

भारतीय संदर्भ में स्त्री का संघर्ष अक्सर परिवार के भीतर से शुरू होता है। परिवार उसके लिए सुरक्षा और भावनात्मक संबंधों का केंद्र भी है और कई बार नियंत्रण तथा सामाजिक अपेक्षाओं का स्थान भी।

इस द्वंद्व को समकालीन हिंदी साहित्य ने गंभीरता से प्रस्तुत किया है।

स्त्री का प्रतिरोध हमेशा परिवार को नकारना नहीं है। कई बार वह परिवार की संरचना के भीतर समानता, सम्मान और स्वतंत्रता की माँग करती है।

यहाँ स्त्री-विमर्श का एक महत्वपूर्ण पक्ष सामने आता है—स्त्री का उद्देश्य हमेशा पुरुष-विरोध नहीं है। उसका मूल प्रश्न **असमान सत्ता-संबंधों का विरोध** है।

इसलिए समकालीन स्त्री लेखन को पुरुष-विरोधी साहित्य के रूप में सीमित करना उचित नहीं होगा। उसका व्यापक लक्ष्य लैंगिक समानता और मानवीय गरिमा की स्थापना है।

दलित स्त्री और अंतर्विभाजक अस्मिता

स्त्री अस्मिता का प्रश्न सभी स्त्रियों के लिए समान नहीं है। जाति, वर्ग, धर्म, क्षेत्र और आर्थिक स्थिति स्त्री के अनुभवों को प्रभावित करते हैं।

इसी संदर्भ में intersectionality की अवधारणा महत्वपूर्ण है। Kimberlé Crenshaw ने बताया कि किसी व्यक्ति के अनुभव को केवल एक पहचान के आधार पर समझना पर्याप्त नहीं है; विभिन्न सामाजिक संरचनाएँ एक-दूसरे के साथ जुड़कर भेदभाव के अनुभव को प्रभावित कर सकती हैं [9]।

हिंदी साहित्य में दलित स्त्री लेखन ने इस प्रश्न को विशेष रूप से सामने रखा है। दलित स्त्री को एक ओर जातिगत भेदभाव का सामना करना पड़ता है और दूसरी ओर लैंगिक असमानता का भी।

कौसल्या बैसंत्री की आत्मकथा *दोहरा अभिशाप* इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसमें जाति और स्त्री होने के दोहरे अनुभवों को आत्मकथात्मक स्वर में अभिव्यक्त किया गया है [10]।

इस प्रकार स्त्री अस्मिता का समकालीन विमर्श केवल सामान्य "स्त्री" की बात नहीं कर सकता। उसे विभिन्न सामाजिक पृष्ठभूमियों की स्त्रियों के अलग-अलग अनुभवों को भी समझना होगा।

आदिवासी स्त्री और साहित्य

स्त्री अस्मिता का एक और महत्वपूर्ण आयाम आदिवासी स्त्री का अनुभव है। आदिवासी स्त्री का जीवन प्रकृति, समुदाय, भूमि, विस्थापन, श्रम और सांस्कृतिक पहचान से गहराई से जुड़ा होता है।

आदिवासी साहित्य ने मुख्यधारा की साहित्यिक दृष्टि को चुनौती देते हुए आदिवासी समाज की अपनी आवाज को सामने रखा है। आदिवासी स्त्री लेखन में स्त्री की पहचान केवल लैंगिक प्रश्न तक सीमित नहीं रहती; वह भूमि, जंगल, समुदाय और सांस्कृतिक अस्तित्व के प्रश्नों से भी जुड़ती है।

इसलिए समकालीन स्त्री-विमर्श को अधिक व्यापक बनाने के लिए दलित, आदिवासी, ग्रामीण, श्रमिक और हाशिए की स्त्रियों के साहित्य को समान महत्व देना आवश्यक है।

स्त्री प्रतिरोध के बदलते रूप

स्त्री प्रतिरोध की अवधारणा समय के साथ बदली है। प्रारंभिक प्रतिरोध अक्सर सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध व्यक्तिगत विद्रोह के रूप में दिखाई देता था। समकालीन साहित्य में प्रतिरोध के रूप अधिक विविध हो गए हैं।

शिक्षा प्राप्त करना, आर्थिक रूप से स्वतंत्र होना, अपनी पसंद का जीवन चुनना, हिंसा का विरोध करना, अपनी देह पर अधिकार की माँग करना, लेखन करना और अपनी आवाज को सार्वजनिक करना—ये सभी प्रतिरोध के रूप हो सकते हैं।

bell hooks ने feminist theory को व्यापक सामाजिक न्याय के प्रश्नों से जोड़ते हुए यह स्पष्ट किया कि स्त्री-मुक्ति का संघर्ष केवल लैंगिक सत्ता के विरुद्ध नहीं, बल्कि जाति, वर्ग और अन्य प्रकार की असमानताओं के विरुद्ध भी होना चाहिए [11]।

इस दृष्टि से समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री प्रतिरोध को केवल व्यक्तिगत विद्रोह के रूप में नहीं, बल्कि व्यापक सामाजिक परिवर्तन की चेतना के रूप में समझा जा सकता है।

आत्मनिर्णय से आत्मनिर्माण तक

स्त्री अस्मिता का अंतिम लक्ष्य केवल स्वतंत्रता की माँग करना नहीं, बल्कि स्वयं अपनी पहचान का निर्माण करना है।

आत्मनिर्णय से आत्मनिर्माण की यात्रा में स्त्री यह स्वीकार करती है कि उसकी पहचान समाज द्वारा दी गई भूमिकाओं तक सीमित नहीं है।

वह माँ हो सकती है, पत्नी हो सकती है, बेटी हो सकती है, लेकिन इन भूमिकाओं के अतिरिक्त वह एक स्वतंत्र व्यक्तित्व भी है।

समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री पात्रों का यह आत्मनिर्माण अनेक रूपों में दिखाई देता है। वे अपने अतीत की पुनर्व्याख्या करती हैं, वर्तमान को चुनौती देती हैं और भविष्य के लिए स्वयं निर्णय लेने का प्रयास करती हैं।

यही स्त्री अस्मिता के विमर्श की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री-विमर्श की उपलब्धियाँ

समकालीन हिंदी साहित्य ने स्त्री जीवन को साहित्य के केंद्र में स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसके माध्यम से स्त्री के निजी अनुभवों को सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नों से जोड़ा गया है।

इस साहित्य ने विवाह, परिवार, मातृत्व, देह, काम, प्रेम, घरेलू हिंसा, आर्थिक स्वतंत्रता, कार्यस्थल और सामाजिक प्रतिष्ठा जैसे प्रश्नों पर नए विमर्श उत्पन्न किए हैं।

इसने यह भी स्थापित किया है कि "व्यक्तिगत" अनुभव हमेशा केवल व्यक्तिगत नहीं होता। कई बार व्यक्तिगत अनुभवों के पीछे व्यापक सामाजिक संरचनाएँ कार्य करती हैं।

स्त्री का घरेलू श्रम, उसकी स्वतंत्रता पर नियंत्रण, उसकी देह पर सामाजिक अधिकार और उसकी आवाज को दबाने की प्रवृत्ति व्यापक सामाजिक संरचनाओं से जुड़ी हो सकती है।

इसलिए समकालीन हिंदी स्त्री साहित्य व्यक्तिगत अनुभव को सामाजिक आलोचना में बदलने की क्षमता रखता है।

वर्तमान समय की चुनौतियाँ

आज स्त्री ने शिक्षा, रोजगार और सार्वजनिक जीवन के अनेक क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति की है, लेकिन लैंगिक असमानता समाप्त नहीं हुई है।

डिजिटल युग ने स्त्री को अपनी आवाज व्यक्त करने के नए मंच दिए हैं, लेकिन online harassment, trolling, cyber violence और डिजिटल लैंगिक असमानता जैसी नई चुनौतियाँ भी सामने आई हैं।

इसी प्रकार बाजार ने स्त्री की स्वतंत्रता के नए अवसर दिए हैं, लेकिन उसने स्त्री के शरीर और सौंदर्य को उपभोक्ता वस्तु के रूप में प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति को भी बढ़ाया है।

समकालीन हिंदी साहित्य इन नई चुनौतियों को भी अपने भीतर समाहित कर रहा है।

इसलिए आज का स्त्री-विमर्श केवल पितृसत्ता की पारंपरिक संरचनाओं तक सीमित नहीं रह सकता। उसे डिजिटल संस्कृति, बाजारवाद, मीडिया, उपभोक्तावाद और बदलते पारिवारिक संबंधों को भी अपने अध्ययन में शामिल करना होगा।

निष्कर्ष

समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री अस्मिता का विमर्श एक व्यापक सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन का संकेत है। स्त्री अब केवल साहित्य की विषय-वस्तु नहीं है; वह साहित्य की सक्रिय रचनाकार, आलोचक और वैचारिक उपस्थिति भी है।

Simone de Beauvoir के स्त्री की सामाजिक निर्मिति संबंधी विचार [1], Kate Millett की सत्ता और लैंगिक संबंधों की अवधारणा [2], Elaine Showalter की महिला साहित्यिक परंपरा संबंधी दृष्टि [8] और Kimberlé Crenshaw की intersectionality की अवधारणा [9] स्त्री अस्मिता के समकालीन विमर्श को समझने के लिए महत्वपूर्ण वैचारिक आधार प्रदान करती हैं।

हिंदी साहित्य में कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, मृदुला गर्ग, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, चित्रा मुद्गल, अनामिका और अन्य लेखिकाओं ने स्त्री के जीवन के अनेक अनछुए और जटिल प्रश्नों को साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान की है।

समकालीन हिंदी साहित्य की स्त्री अब केवल "त्याग" और "सहनशीलता" की प्रतीक नहीं है। वह प्रश्न करती है, असहमति व्यक्त करती है, निर्णय लेती है और अपने अस्तित्व की नई परिभाषा गढ़ती है।

उसका संघर्ष पुरुष से नहीं, बल्कि उस मानसिकता और सामाजिक व्यवस्था से है जो उसे उसकी स्वतंत्र पहचान से वंचित करती है।

इसलिए स्त्री अस्मिता का अंतिम लक्ष्य केवल पितृसत्ता का प्रतिरोध नहीं है। उसका व्यापक उद्देश्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना है जिसमें स्त्री को **समानता, स्वतंत्रता, सम्मान, गरिमा और आत्मनिर्णय** का अधिकार प्राप्त हो।

समकालीन हिंदी साहित्य इसी परिवर्तन की साहित्यिक अभिव्यक्ति है। यह साहित्य हमें यह सोचने के लिए प्रेरित करता है कि स्त्री को केवल समाज द्वारा दी गई पहचान में नहीं, बल्कि उसकी अपनी आवाज, उसकी इच्छा, उसके निर्णय और उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व में देखा जाना चाहिए।

अंततः स्त्री अस्मिता का विमर्श स्त्री को "दूसरा" मानने वाली दृष्टि से "स्व" की ओर यात्रा है—एक ऐसी यात्रा जिसमें स्त्री स्वयं अपने अस्तित्व की भाषा लिखती है, अपनी पहचान निर्धारित करती है और अपने भविष्य का निर्णय स्वयं लेने का अधिकार प्राप्त करती है।

संदर्भग्रंथ सूची

1. Beauvoir S de. The second sex. Borde C, Malovany-Chevallier S, translators. New York: Vintage Books; 2011.
2. Millett K. Sexual politics. New York: Columbia University Press; 2016.
3. Premchand. Sevasadan. New Delhi: Rajkamal Prakashan; विभिन्न संस्करण.
4. Bhandari M. Aapka Bunti. New Delhi: Radhakrishna Prakashan; विभिन्न संस्करण.
5. Sobti K. Mitro Marjani. New Delhi: Rajkamal Prakashan; विभिन्न संस्करण.
6. Garg M. Chittacobra. New Delhi: Sat Sahitya Prakashan; विभिन्न संस्करण.
7. Hochschild AR, Machung A. The second shift: working families and the revolution at home. New York: Penguin Books; 2012.
8. Showalter E. A literature of their own: British women novelists from Brontë to Lessing. Princeton: Princeton University Press; 1977.
9. Crenshaw K. Demarginalizing the intersection of race and sex: a Black feminist critique of antidiscrimination doctrine, feminist theory and antiracist politics. University of Chicago Legal Forum. 1989;1989(1):139-167.
10. Baisantri K. Dohra Abhishap. New Delhi: Vani Prakashan; विभिन्न संस्करण.
11. hooks b. Feminist theory: from margin to center. 2nd ed. Cambridge: South End Press; 2000.

Dr. A. V. Nandaniya
Associate Professor, Shri V. M. Mehta Muni. Arts & Commerce College, Jamnagar.